बैंक समाधान ढाँचा : भारतीय संदर्भ में चुनौतियाँ *

दुव्वुरी सुब्बाराव

भारतीय रिज़र्व बैंक की ओर से *''बैंक समाधान ढाँचे में निक्षेप बीमा की भूमिका - वित्तीय संकट से शिक्षा''* पर इस आइएडीआइ-डीआइसीजीसी (निक्षेप बीमा अंतरराष्ट्रीय संघ - निक्षेप बीमा और प्रत्यय गारंटी निगम) के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधियों का एक बार फिर हार्दिक स्वागत करता हूँ। थार मरुस्थल के किनारे बसे-किलों और महलों, झीलों और बगीचों तथा लोक समाज एवं ऐतिहासिक धरोहरों की इस जोधपुर नगरी - जिसमें परम्परा और आधुनिकता का संगम है और जो भारत का सर्वोत्तम स्थल है - में आपका हार्दिक स्वागत है।

निक्षेप बीमा और प्रत्यय गारंटी निगम (डीआइसीजीसी)

2. यह सम्मेलन डीआइसीजीसी के स्वर्ण जयंती समारोहों का ही एक हिस्सा है। यह निगम विश्व की दूसरी सबसे पुरानी निक्षेप बीमा प्रणाली है। गत 50 वर्षों में डीआइसीजीसी भारत के वित्तीय क्षेत्र के विकास का एक महत्वपूर्ण भाग रही है, इसने वृद्धि की है, विकास किया है, कई चुनौतियों का सामना किया है, और नए जोखिमों का सफलतापूर्वक प्रबंधन किया है। अपनी राह पर आगे चलते हुए डीआइसीजीसी को तेज़ी से बढ़ती हुई और संरचनात्मक दृष्टि से रूपान्तरित होती हुई अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई माँगों को पूरा करने के लिए स्वयं को नया रूप देना होगा। इसके लिए इसे विश्व की निक्षेप बीमा प्रणालियों के अनुभवों तथा वैश्विक वित्तीय संकट के अनुभवों से सीखना होगा। अतः यह सम्मेलन, डीआइसीजीसी के लिए सीखने का एक महत्वपूर्ण अवसर है ताकि यह अपने कारोबार में, मूल्य श्रृंखला में और आगे बढ़ सके।

वित्तीय संकट से शिक्षा

3. वित्तीय संकट ने, वैश्विक वृद्धि और विकास को करारी चोट दी है। तीन वर्ष हो चुके हैं, संकट अभी भी हमारे साथ है, बस इसने जगह बदल ली है। कुछ अर्थों में 2008 और 2011 के संकट एक जैसे ही हैं। दोनों के मूल में जोखिम का गलत मूल्यांकन है - 2008 में प्राइवेट कर्ज़ का और 2011 में सरकारी कर्ज़ का, दोनों छोटे लगने वाले स्रोतों से शुरूहुए। 2008 में अमरीका में 'सब-प्राइम' ऋण वितरण तथा 2011 में सरकारी कर्ज़, दोनो ही मामलों में, संसर्गजन्य प्रभाव की मात्रा काफी बड़ी और विध्वंसकारी थी। 2008 और 2011 के बीच विषमताएँ भी काफी बड़ी रहीं। 2008 में संकट, प्राइवेट कर्ज़ और क्लिष्ट वित्तीय उत्पादों के इर्द-गिर्द घूमा और यह निर्धारित करने में मुश्किल पैदा कर दी कि जोखिम आखिर कहाँ था; 2011 में संकट सरकारी कर्ज़ के इर्द-गिर्द घूम रहा है और यह काफी स्पष्ट है कि एक्सपोज़र और जोखिम कहाँ-कहाँ हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि 2008 में सरकारें समाधान का हिस्सा थीं जबकि 2011 में सरकारें ही समस्या हैं, 2008 में हम अज्ञात-अज्ञातों से जूझ रहे थे जबकि 2011 में हम ज्ञात अज्ञातों से जूझ रहे हैं।

4. सम्मेलन के दृष्टिकोण से हृदयग्राही और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वित्तीय संकट चाहे कहीं से भी उपजे, चाहे उसके कुछ भी कारण हों और चाहे यह कैसे भी आगे बढ़े, बैंक ही संकट के केंद्र बिंदु होते हैं और जब बैंक दबाव में आते हैं तो जमाराशि बीमा, संकट को रोकने और विश्वास को पुनः बहाल करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अपनी इस भूमिका को सक्षम और प्रभावी तरीके से निभाने की चुनौती ही जमाराशि बीमा प्रणाली की होती है।

5. वैश्विक वित्तीय संकट ने इसकी पुन: जाँच की आवश्यकता महसूस करवा दी है कि वित्तीय सुरक्षा तंत्र कैसे कार्य करते हैं और पर्यवेक्षकों, बैंक दिवाला एजेंसियों, तथा जमाराशि बीमाकर्ताओं के बीच किस प्रकार के संबंध हैं। संकट ने हमें यह महसूस करवा दिया है कि जमाकर्ता उससे भी अधिक जोखिम-संवेदी होते हैं जितना कि हमने सोचा था। अब हम पहले से भी अधिक जान गए हैं कि छोटी-छोटी क्षतियों के खतरों से भी अस्थिरता पैदा हो सकती है। इससे आघात की स्थिति में एक सही एकीकृत नीति प्रणाली की जरूरत रेखांकित होती है, जिसके द्वारा पर्यवेक्षण, विनियमन, दिवाला तथा जमाराशि बीमा के लिए जवाबदेह एजेंसियाँ त्वरित और सुसमन्वित रीति से कार्रवाई करें।

*आइएडीआइ -डीआइसीजीसी अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में भारत रिज़र्व बैंक के गवर्नर डा. दुव्वुरी सुब्बाराव द्वारा दिया गया उद्घाटन भाषण - बैंक समाधान रूपरेखा में निक्षेप बीमे की भूमिका - वित्तीय संकट से शिक्षा - डीआइसीजीसी के स्वर्ण जयंती समारोहों के एक भाग के रूप में आयोजित; जोधपुर, भारत, नवंबर 14, 2011.

6. हमने संकट से यह भी शिक्षा ली है कि एक सुनम्य वित्तीय प्रणाली को खड़ा करने के लिए तीन स्तंभों की आवश्यकता होती है। पहला स्तंभ है - प्रभावी पर्यवेक्षण। इस संकट से हमें सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा यह मिली है कि पर्यवेक्षण को और मजबूत तथा प्रभावी बनाया जाना चाहिए। दूसरा स्तंभ है - एक मजबूत विनियामक ढाँचा जो प्रणालीगत दृष्टिकोण को एकीकृत करे और जिसमें चक्रीय उतार-चढ़ावों को नरम रखने के लिए अन्तर्निहित सुरक्षाएं मौजूद हों। और तीसरा स्तंभ - जो कि इस सम्मेलन का विषय है - एक ऐसा समाधान ढाँचा जो त्वरित और प्रभावी हो तथा अधिक जोखिम को सीमित करने के लिए समुचित सुरक्षा परिधि का निर्माण करे।

7. विश्व में इसके लिए भिन्न-भिन्न मॉडल हैं कि उपर्युक्त तीनों स्तंभों के लिए उत्तरदायित्व विभिन्न एजेंसियों में कैसे बाँटे जाएँ। किसी भी देश की विशिष्ट विनियामक संरचना, जमाराशि बीमा प्रणाली के अधिदेश और भूमिका को प्रभावित करती है। कुछ मामलों में जमाराशि बीमा प्रणालियाँ समाधान प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल होती हैं, कुछ में कम सक्रिय होती हैं और कुछ में बिल्कुल सक्रिय नहीं होतीं। भारत में बैंक समाधान पूरी तरह विनियामकों और पर्यवेक्षकों के हाथों में ही है और डीआइसीजीसी केवल अदाकर्ता की भूमिका निभाता है। अतः मैंने उपयुक्त समझा कि मैं इस सम्मेलन द्वारा उपलब्ध करवाए गए मंच का प्रयोग, बैंक समाधान में आने वाली चुनौतियों का उल्लेख करने के लिए, और इस प्रक्रिया में डीआइसीजीसी के समक्ष आने वाले कार्यों की पहचान करने में करूं।

भारतीय वित्तीय व्यवस्था

8. बैंक समाधान की चुनौतियों पर चर्चा करने से पूर्व मैं भारत की वित्तीय प्रणाली का एक व्यापक परिदृश्य उपस्थित करना चाहूँगा।

9. हमारी वित्तीय प्रणाली में वाणिज्य बैंक, सहकारी बैंक, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ, बीमा कंपनियाँ, भविष्य निधि और म्यूचुअल फंड्स तथा नवनिर्मित पेंशन फंड्स शामिल हैं, जिनकी कुल संपत्तियाँ जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) के 140 प्रतिशत के करीब हैं। वाणिज्य बैंकों का वित्तीय प्रणाली में प्रभुत्व है और कुल वित्तीय परिसंपत्तियों में इनका 60 प्रतिशत हिस्सा है। वाणिज्य बैंकों के भीतर भी सरकारी क्षेत्र के बैंकों की मजबूत उपस्थिति है और कुल परिसंपत्तियों का लगभग 75 प्रतिशत उन्हीं के पास है। भारत के वाणिज्य बैंकों की पूँजी-स्थिति बहुत अच्छी है। जून 2011 के अंत में बासेल II मानदंडों के अंतर्गत,जोखिम भारित परिसंपत्ति की तुलना में प्रणाली स्तरीय पूँजी का अनुपात (सीआरएआर) 13.9 प्रतिशत था जो कि भारतीय विनियामकों द्वारा निर्धारित न्यूनतम 9 प्रतिशत की तुलना में काफी अधिक था।

10. कुछ ऐसी संरचनात्मक और विनियामक विशेषताएँ हैं जो भारत की वित्तीय प्रणाली को दबाव के वक्त सुनम्य बनाती हैं। वाणिज्य बैंकों को अपनी परिसंपत्तियों का एक महत्वपूर्ण अनुपात, इस समय 24 प्रतिशत, सरकारी पत्रों के रूप में रखना होता है। रिज़र्व बैंक की भी प्रारक्षित निधि संबंधी यह अपेक्षा है कि बैंक नक़दी प्रारक्षित अनुपात (सीआरआर) की सीमा तक अपनी प्रारक्षित निधियाँ रिज़र्व बैंक के पास रखें। इसमें महत्वपूर्ण यह है कि बहुत सारे बैंक, चूँकि सरकारी स्वामित्व में हैं, इसलिए लोगों का इनमें विश्वास है। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि उपर्युक्त विनियामक और संरचनात्मक तत्वों से निर्मित सारी सुरक्षा किसी लागत पर बनती है और हम लागत और लाभ के संतुलन से जूझते हैं।

11. भारत के वित्तीय सुरक्षा तंत्र में भारतीय रिज़र्व बैंक की महती भूमिका है। इसके पास अपने पारंपरिक केंद्रीय बैंक कार्यों के अतिरिक्त बैंकों के विनियमन और पर्यवेक्षण की भी जिम्मेदारी है। बैंककारी विनियमन अधिनियम के अंतर्गत रिज़र्व बैंक के पास वाणिज्य बैंकों पर व्यापक समाधान/विनियमन शक्तियाँ है। चूँकि डीआइसीजीसी रिज़र्व बैंक के पूर्ण स्वामित्व के अधीन एक सहायक संस्था है इसलिए यह छोटे जमाकर्ताओं की सुरक्षा के लिए केंद्रीय बैंक के साथ निकट के तालमेल से काम करती है।

12. वित्तीय स्थिरता के मोर्चे पर हाल ही में एक महत्वपूर्ण पहल हुई है और वह है, वित्त मंत्री की अध्यक्षता में 'वित्तीय स्थिरता और विकास परिषद'' (एफएसडीसी) की स्थापना, जिसे प्रणालीगत परिवीक्षा, विनियामक तालमेल, वित्तीय क्षेत्र का विकास और वित्तीय साक्षरता को बढ़ावा देने तथा वित्तीय समावेशन जैसे व्यापक अधिदेश प्रदान किए गए हैं । भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर की अध्यक्षता में गठित एक उपसमिति, एफएसडीसी के परिचालन भाग का कार्य देखती है। यह विनियामकों के बीच तथा सरकार और विनियामकों के बीच तालमेल के लिए एक व्यवस्था प्रदान करती है जो दबाव के दौरान बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है, जैसा कि हमने संकट के दौरान महसूस भी किया है।

13. भारत में वाणिज्य बैंकों के फेल होने की घटनाएँ न के बराबर हैं। अंतिम बार 2004 में एक प्रमुख वाणिज्य बैंक अत्यंत दबाव में आया था और उसका एक सरकारी क्षेत्र के मजबूत बैंक के साथ तुरंत विलय करके इस समस्या को प्रभावी तरीके से सुलझा लिया गया था। तथापि, शहरी सहकारी बैंकों के फेल होने की घटनाएँ काफी आम हैं, जो बैंक न्यूनतम निर्धारित अपेक्षाओं का पालन करने में असफल रहते हैं उन पर हम एक नियमित निगरानी तंत्र बैठा देते हैं। कमज़ोर बैंक के लिए एक कार्रवाई योजना बनाकर लागू करनी होती है जिसमें और पूंजी लगाने समेत, महत्त्वपूर्ण वित्तीय पैरामीटरों के लक्ष्य दिए गए होते हैं।

यदि बैंक में कमज़ोरी बनी रहती है और उसकी निवल मालियत ऋणात्मक हो जाती है और उसकी स्थिति में बदलाव के लिए कोई विश्वसनीय कार्ययोजना नहीं कारगर हो पाती है तो उसे अधिस्थगन अवधि (मोरेटोरियम) में रख दिया जाता है। अधिस्थगन अवधि लागू करने का प्रयोजन एक साथ बहुत से लोगों को बैंक से अपने पैसे वापस लेने आने को रोकना, परिसंपत्तियों के क्षरण को रोकना और विनियामकों को टेक ओवर के लिए एक उपयुक्त मज़बूत बैंक खोजने के लिए समय देना होता है। विलय, यथासंभव शीघ्रता से पारदर्शिता से और परामर्शी रीति से किया जाता है। रिज़र्व बैंक में बोर्ड की एक समिति है 'वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड', जो हमारे बैंक पर्यवेक्षण कार्यों की समीक्षा करती है और बैंकों, खासकर कमज़ोर बैंकों के कार्यनिष्पादन पर निगरानी रखती है।

14. भारत में हमने जो आम समाधान विधियाँ अपनाई हैं उनमें ये शामिल हैं : मुश्किल में पड़े बैंक को पुनर्गठित करने में सहायता देना, अथवा इसका किसी मज़बूत संस्था में विलय करना अथवा बैंक बंद करना। जब किसी कमज़ोर बैंक का किसी अन्य बैंक, आमतौर पर किसी सरकारी क्षेत्र के बैंक के साथ विलय किया जाता है तो आमतौर पर उस समय सहायताप्राप्त अथवा अनिवार्य विलय की विधि अपनाई जाती है। कई स्वैच्छिक विलय भी हुए हैं जिनमें किसी मजबूत बैंक ने स्वेच्छा से किसी कमज़ोर बैंक का अधिग्रहण किया। जिन बैंकों को परिसमापन के अंतर्गत रखा गया है उन्हें 'पे-आउट्स' देने के अलावा, डीआइसीजीसी विलय में सहायता प्रदान करती है और जब अधिग्रहणकर्ता बैंक जमाकर्ताओं के दावों के भुगतान की अपनी जिम्मेदारी पूरी करने में असमर्थ होता है तो यह निगम कवरेज सीमा तक जमाकर्ता के दावों में कमी को पूरा करता है। छोटे शहरी सहकारी बैंकों के मामले में आमतौर पर बैंक का परिसमापन कर दिया जाता है और जमाकर्ताओं को प्रतिपूर्ति कर दी जाती है।

बैंक समाधान ढाँचा और निक्षेप बीमा

15. वित्तीय संकट ने सांसर्गिकता को रोकने तथा स्थिरता बहाल करने के लिए त्वरित समाधान की महत्ता को रेखांकित किया है। हमें एक ऐसी समाधान प्रक्रिया की ज़रूरत है जहाँ असुरक्षित तथा ग़ैर-मजबूत तत्त्वों को हटाकर बैंकों का क्रमिक रूप से परिसमापन किया जा सके, परंतु ऐसा करते समय प्रमुख वित्तीय गतिविधियों को सुरक्षित रखा जाए। वित्तीय स्थिरता बोर्ड तथा बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल कमेटी (बीसीबीएस) जैसी मानक निर्धारण करने वाली अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के लिए इस ज़रूरत पर बल दिया गया कि वे मुश्किल में पड़ी सभी प्रकार की वित्तीय संस्थाओं की समस्याओं के समाधान के लिए उपयुक्त तरीका तैयार करें ताकि वित्तीय स्थिरता बनाए रखने, प्रणालीगत जोखिम न्यूनतम रखने, उपभोक्ताओं की सुरक्षा, नैतिक जोखिम सीमित रखने तथा बाज़ार की सक्षमता को बढ़ावा देने में मदद मिल सके। तथापि, यह कार्य अभी 'प्रगति पर है'।

16. भारत में, इस संबंध में हम किस स्थिति में हैं? हालाँकि हम समस्याग्रस्त बैंकों के समाधान में समर्थ रहे हैं तथापि अभी यह स्पष्ट नहीं है कि हमारी समाधान संरचना कितनी कड़ी परीक्षा से गुज़री है। इस सम्बंध में कई प्रश्न हैं : क्या हमारी समाधान प्रक्रिया त्वरित और प्रभावी है? केवल छोटे बैंक ही नहीं मध्यम और बड़े बैंकों की संभावित असफलताओं का सामना करने के लिए ऐसे क्या मूलभूत समाधान उपकरण हैं जो हमारे पास होने चाहिए? यदि हमारी वित्तीय फर्में वैश्वीकृत अथवा प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं तो उनकी महत्ता को सुरक्षित रखने में हमें किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा? डीआइसीजीसी के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण निक्षेप बीमाकर्ता की, समाधान तंत्र में इष्टतम भूमिका क्या है? क्या हमें सुरक्षातंत्र प्रदायकों के बीच, दिवाला उत्तरदायित्वों के वैकल्पिक वितरण पर विचार करना चाहिए?

17. इन प्रश्नों के हल खोजते समय हमें हमारे विधिक और विनियामक फ्रेमवर्क में मूलभूत परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ेगी। इस संबंध में कोई कार्रवाई योजना बना सकने या बनाने का मेरा कोई आशय नहीं है। इसके बजाय मैं सिर्फ इतना करूँगा कि भारत में बैंक समाधान फ्रेमवर्क से संबंधित कुछ विशिष्ट मुद्दों और रुकावटों को यहाँ प्रस्तुत करूँगा।

I. उपयुक्त विधिक ढाँचा

18. पहली चुनौती, समाधान के लिए एक व्यापक विधिक ढांचा विकसित करना है जिसमें विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थाएँ शामिल हों। इस समय प्रबंधन नियंत्रण, वित्तीय संस्थाओं के अधिग्रहण, कारोबार के निलंबन और परिसमापन को नियंत्रित करने वाले संबंधित प्रावधान, विभिन्न कानूनों और विनियमों में फैले हुए हैं। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के बैंक, विभिन्न प्रकार की संविधियों के अंतर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए जो बैंक कंपनियों के रूप में गठित होते हैं वे बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 तथा कंपनी अधिनियम, 1956 द्वारा नियंत्रित होते हैं (निजी क्षेत्र के बैंक तथा विदेशी बैंक कार्यालय)। सरकारी क्षेत्र के बैंकों अर्थात् भारतीय स्टेट बैंक, इसकी सहायक संस्थाएँ, राष्ट्रीयकृत बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, जो कि संसद के विभिन्न अधिनियमों द्वारा बनाए गए हैं, से संबंधित समाधान प्रक्रियाएँ, उनकी संबंधित संविधियों में निहित हैं। सहकारी बैंकों के मामले में केन्द्र अथवा राज्य स्तर पर सहकारिताओं के पंजीयक उनके कार्यों के कुछ पहलुओं की परिवीक्षा के

लिए उत्तरदायी होते हैं जिनमें परिसमापन तथा पुनर्गठन भी शामिल है। निक्षेप बीमा अलग से डीआइसीजीसी अधिनियम में शामिल है परंतु बैंकिंग विधियों के साथ एकीकृत नहीं है। कुल मिलाकर बैंक समाधान को नियंत्रित करने वाला विधिक ढाँचा, चारों तरफ फैला हुआ है जिससे यह ढाँचा जटिल, भ्रामक तथा कभी-कभी अपारदर्शी हो जाता है।

19. एक बड़ा मुद्दा जिस पर ध्यान देने की जरूरत है - वह यह है कि बैंक समाधान के लिए भारत में जो न्यायालयीन प्रक्रिया अपनाई जाती है, क्या उसे और तेज़ किया जा सकता है। यदि बैंक के शेयर धारक, बैंक समाधान करने के विनियामक के अधिकार को चुनौती दे दें, तो, समाधान प्रक्रिया में और देरी हो सकती है? भारत में यदि कोई उद्यम, विलय अथवा समामेलन के ज़रिए, मिलीजुली प्रक्रिया का सहारा लेना चाहे तो उसे प्रतियोगिता आयोग को इसकी अधिसूचना देनी होती है और आयोग को 210 दिनों में इसका निर्णय करने का अधिकार होता है जिसके बाद ही चूक संबंधी खंड लागू होता है। इससे विलय के माध्यम से बैंकों के समाधान का कार्य और क्लिष्ट हो जाता है और यह अनिश्चितता काफी अस्थिरकारी सिद्ध हो सकती है। हमने सरकार के सामने प्रस्ताव रखा है कि बैंक विलयों को इस प्रावधान से छूट दी जाए।

20. भारत में हमें किसी बैंक के समाधान के लिए समय-सीमा तय करने के लिए किसी सर्वोत्तम प्रणाली की खोज करनी चाहिए। यह प्रक्रिया त्वरित होनी चाहिए ताकि बैंक के क्रेडिटर्स खासकर छोटे जमाकर्ताओं को अवांछित देरी अथवा हानि का सामना न करना पड़े, असफल हो चुकी अथवा असफल हो रही संस्था से अधिकतम मूल्य प्राप्त किया जा सके, तथा शेयर धारक हानि की चोट सहें। हम यह भी जानते हैं कि बाज़ार, निर्णय लेने में देरी, तथा असफल हो रही संस्था के भविष्य संबंधी अनिश्चितता के लिए दंड देते हैं। इस सम्मेलन में हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि हमें विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के समाधान के लिए कितनी उचित समय-सीमा रखनी चाहिए जिससे विभिन्न प्रतियोगी हितों में सामंजस्य बना रहे।

II. निक्षेप बीमाकर्ता की बढ़ी हुई भूमिका

21. दूसरा मुद्दा जिस पर हमें विचार करने की जरूरत है - वह यह है कि 'समाधानकर्ता प्राधिकारी' की स्थिति क्या हो - खास तौर पर बैंक असफलताओं की शीघ्र पहचान करने में मदद देने और उसके प्रभावी समाधान के लिए बने पर्यवेक्षण ढाँचे में डीआइसीजीसी की क्या और अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। गत 50 वर्षों में डीआइसीजीसी ने भुगतानकर्ता की भूमिका बड़े अच्छे तरीके से निभाई है। परंतु जमाकर्ताओं को जल्दी भुगतान करने के संबंध में इसके सामने एक रुकावट यह आती है कि इसके पास जमाकर्ताओं के संबंध में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं होती। भारत में वाणिज्य बैंकों के फेल होने के मामले इक्का-दुक्का ही हैं, और निक्षेप बीमा प्रणाली के लाभार्थी मुख्यतः शहरी सहकारी बैंक ही हैं। हालाँकि शहरी सहकारी बैंकों के लिए विनियामक और पर्यवेक्षकीय ढाँचा काफी समय से वाणिज्य बैंकों के समान ही बना दिया गया है, फिर भी इन बैंकों का समाधान-तंत्र पूरी तरह से रिज़र्व बैंक के हाथ में नहीं है। हमें यह अधिकार केंद्र अथवा राज्य सरकारों के साथ बाँटना पड़ता है। इस दोहरे नियंत्रण के कारण इस घटक के बैंकों के समाधान कार्य में, परिसमापकों की नियुक्ति, जमाकर्ताओं के बारे में सूचना प्राप्त करने (जो कि ज़रूरी नहीं कि इलेक्ट्रॉनिक रूप में उपलब्ध हों), जमाकर्ताओं को भुगतान तथा परिसंपत्तियों की वसूली में देर होती है।

22. पूरे विश्व में निक्षेप बीमा प्रणालियाँ, व्यापक अधिदेश के साथ, संकट में पड़े बैंकों के समाधान में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं ग्रहण कर रही हैं। चूँकि उनके पास बैंकों के जोखिमों के आकलन की जानकारी होती है अतः वे त्वरित समाधान कार्रवाई करने में समर्थ होती हैं। इस व्यवस्था से बीमाकर्ता को केवल भुगतान प्रणाली बनने की बजाय लागत संबंधी समस्याओं का समाधान करने की क्षमता मिलती है।

23. निक्षेप बीमाकर्ता किसी असफल संस्था के समाधान में 'न्यूनतम लागत' का दृष्टिकोण अपनाते है। इसमें सरकार, विनियामक संस्थाओं, केंद्रीय बैंक तथा निक्षेप-बीमा-कर्ता जैसे सुरक्षातंत्र प्रदायकों द्वारा की गई उपर्युक्त कार्रवाइयों में निकट सहयोग और तालमेल शामिल होता है। अनुभव बताता है कि पर्याप्त अधिदेशों और शक्तियों वाले और परिचालनात्मक स्वतंत्रता और सुनिश्चित आकस्मिक निधियों वाले निक्षेप बीमाकर्ता, जनता में प्रभावी रूप से विश्वास बनाए रखने, और वित्तीय संकटों का सामना करने में अधिक असरदार होते हैं।

24. कई देशों ने अपनी निक्षेप बीमा प्रणालियों और समाधान ढाँचों की समीक्षा की है और उनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। भारत में हमें, जमाकर्ताओं की राशियों के त्वरित निपटान, कम लागतों तथा समाधान की गति एवं वित्तीय प्रणाली की स्थिरता जैसे लाभ पाने की दृष्टि से फेल हुए बैंकों के समाधान में, डीआइसीजीसी को बढ़ा हुआ अधिदेश प्रदान करने से जो लाभ मिल सकते हैं उनके बारे में सोचना चाहिए। इस समस्या का समाधान एक स्पष्ट रूप से परिभाषित शोध-क्षम-तंत्र बनाने तथा एक सुविकसित समाधान प्रक्रिया तैयार

करने में हो सकता है। सरकार द्वारा नियुक्त 'वित्तीय क्षेत्र विधायन सुधार आयोग' वित्तीय क्षेत्र पर लागू सभी कानूनों की व्यापक समीक्षा कर रहा है, ताकि इन्हें वृद्धिशील और आधुनिक बन रहे वित्तीय क्षेत्र की सहायता के लिए प्रयोग में लाया जा सके। आयोग से अपेक्षा है कि वह कुछ कानूनों को बुनियादी तौर पर पुनर्गठित करने के लिए सिफारिशें देगा ताकि कानूनी ढाँचों को आसान, पारदर्शी और सक्षम बनाया जा सके। रिज़र्व बैंक की ओर से, हम आयोग के सामने अपना मत प्रस्तुत करेंगे तथा बैंक समाधान से संबंधित विधियों को सुव्यवस्थित करने और डीआइसीजीसी के अध्यादेश की समीक्षा, हमारे प्रस्तुतीकरण के हिस्से होंगे।

III. प्रति -सहायता (क्रॉस-सब्सिडाइज़ेशन)

25. हमारी तीसरी चुनौती निक्षेप बीमा के अंतर्गत शामिल किए जाने वाले बैंकों की विविधता से है, विशेषकर वाणिज्य बैंकों और सहकारी बैंकों की विधियों और बनावट भिन्न-भिन्न हैं, और जैसा कि मैंने पहले कहा, उनकी असफलता-दर भी भिन्न है परंतु डीआइसीजीसी के अंतर्गत बीमे का प्रीमियम सबके लिए एक समान है। इससे वाणिज्य बैंकों द्वारा सहकारी बैंकों की प्रति-सहायता स्वतः स्पष्ट है। उदाहरण के तौर पर गत 5 वर्षों में डीआइसीजीसी द्वारा प्राप्त प्रीमियम का औसतन 92 प्रतिशत वाणिज्य बैंकों ने अंशदान दिया जबकि भुगतान की समूची राशि सहकारी बैंकों को ही दी गई थी जिनका डीआइसीजीसी द्वारा बीमित निक्षेपों में केवल 14 प्रतिशत का ही हिस्सा है।

26. यह प्रति-सहायता अर्थात् बैंकों के सभी वर्गों से एक समान दर पर प्रीमियत लेना स्पष्टतः एक नैतिक जोखिम है। इस प्रति-सहायता को कम करने के लिए एक विकल्प यह है कि जोखिम आधारित प्रीमियम वसूल किया जाए, परंतु हम इस बारे में आशावादी नहीं हैं कि भारत के लिए यह अनिवार्यत: सबसे अच्छी स्थिति होगी। ऐसे बैंकों पर उच्चतर प्रीमियम का अतिरिक्त बोझ डालना जो पहले से ही कमज़ोर हैं, परंतु फिर भी वित्तीय समावेशन के बहुत ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्य को पूरा करने में मदद कर रहे हैं, तथा नैतिक जोखिम को न्यूनतम करने के बीच तुलना के लिए, एक स्पष्ट आकलन किया जाना जरूरी है। एक और चिंता यह है कि जोखिम आधारित प्रीमियम लगाने से इन पर 'बाज़ार-प्रभाव' भी पड़ सकता है और ऊँचे प्रीमियम के बोझ से प्रभावित पहले से ही कमज़ोर बैंकों के शेयरों की कीमतों पर बुरा असर पड़ सकता है। दूसरी ओर, बड़े बैंकों पर लगाए जाने वाले उच्चतर प्रीमियम को अधिभार के रूप में देखा जाए, क्योंकि उनका व्यापक बहिर्प्रभाव बाकी प्रणाली पर पड़ता है तो, प्रति-सहायता को, न्यायसंगत भी ठहराया जा सकता है। मुझे आशा है कि प्रति-सहायता और नैतिक जोखिम के इन मुद्दों पर सम्मेलन में चर्चा होगी।

IV. निक्षेप बीमा निधि की पर्याप्तता

27. चौथी चुनौती, जिसके बारे में मैं सवाल उठाना चाहता हूँ वह निक्षेप बीमा निधि की पर्याप्तता के आकलन से जुड़ी है। निक्षेप बीमा में लोगों का भरोसा अधिकांशतः इस बात पर निर्भर करता है कि क्या लोगों को यह विश्वास है कि निक्षेप निधि उनके वादों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है। डीआइसीजीसी के पास जो निधि है वह बीमित बैंकों से वसूल किए गए प्रीमियम, तथा निधियों के निवेश से जनित आय से बनती है। लोगों का भरोसा बनाए रखने के लिए निधि को इतना मजबूत बनाया जाना चाहिए कि सामान्य स्थिति में बैंकों की आम असफलता के कारण किए जाने वाले दावों का भुगतान किया जा सके। असफलताओं के पिछले रिकॉर्ड देखने से लगता है कि डीआइसीजीसी के पास रखी निधि पर्याप्त है। परंतु, यह स्पष्ट नहीं है कि यदि 1-2, छोटे अथवा मध्यम आकार के वाणिज्य बैंकों की संभावित असफलता की स्थिति में, यह दावों का भुगतान करने की स्थिति में होगी अथवा नहीं। यह भी सच है कि कोई भी निक्षेप बीमाकर्ता, अपनी निधि में, इतनी नकदी नहीं रख सकता कि वह व्यापक वित्तीय संकट का सामना कर सके। बैंकों की प्रणालीगत असफलता की असाधारण स्थिति में यह परमावश्यक है कि निक्षेप बीमाकर्ता को, केंद्रीय बैंक और / अथवा सरकार से, असीमित और त्वरित निधियाँ उपलब्ध करवाई जाएँ ताकि वित्तीय स्थिरता को कोई नुकसान न हो। जैसाकि हम सब जानते हैं, इसी प्रकार की सुविधाओं ने, 2008 के संकट के दौरान, जमाकर्ताओं में फैली अफ़रा- तफ़री को रोकने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

V. सीमा पार बैंक समाधान

28. न केवल हमारे लिए, बल्कि पूरे विश्व स्तर पर, चुनौती का एक और क्षेत्र है 'सीमा पार बैंक समाधान'। मुख्य समस्या है देशों के बीच विधियों और विनियामक ढाँचों में विभिन्नताएँ, जिससे समाधान कठिन, अक्षम तथा अधिक लागत वाला हो जाता है। इसलिए एक अधिक समरस, विधिक और विनियामक ढाँचे की दिशा में सोचने और कार्य करने की आवश्यकता है।

29. भारत में सीमा पार बैंकों की उपस्थिति अपेक्षाकृत कम है। लेकिन जैसे-जैसे विश्व अर्थव्यवस्था में सुधार आएगा तथा वैश्विक व्यापार और वित्तीय लेन-देन बढ़ेगा, भारत के सीमा पार जोखिम भी बढ़ेंगे। समय आ गया है कि असफलता के उद्गम पर ध्यान दिए बिना इसके तेज़ी से और प्रभावी समाधान के लिए कदम उठाए जाएँ। हमें विदेशी

पर्यवेक्षी प्राधिकारियों के साथ मजबूत संबंध बनाने होंगे, सूचना का आदान-प्रदान बढ़ाना होगा और असफल होती वैश्विक संस्था के समाधान के लिए सहमति बनाने के लिए उपाय खोजने होंगे।

30. इसी परिप्रेक्ष्य से जुड़ा एक मुद्दा, जो पिछले कुछ वर्षों से हमारा ध्यान आकर्षित कर रहा है, भारत में विदेशी बैंकों के परिचालनों के लिए उपयुक्त फ्रेमवर्क बनाने से जुड़ा है। विशेषकर, हम इस बात पर चर्चा कर रहे हैं कि - क्या हमें विदेशी बैंकों के स्थानीय निगमीकरण को अनिवार्य बनाने की जरूरत है? पूरे विश्व में सीमा-पार-बैंकिंग-समूहों की संगठनात्मक संरचना भिन्न-भिन्न है और इससे उनके कारोबारी मॉडलों की विविधता और विभिन्न देशों के वित्तीय विकास के विभिन्न चरण परिलक्षित होते हैं। शाखा और सहायक संस्था मॉडलों, दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ और सीमाएँ हैं। पूरे विश्व में आमतौर पर सबकी यह राय है कि ब्रांच मॉडल के अधीन, किसी विदेशी बैंक के फेल होने की स्थिति में, स्थानीय क्रेडिटरों के दावों को पूरा करने के लिए उपलब्ध परिसंपत्तियों तथा शाखा की स्थानीय देयताओं को निर्धारित करना, काफी कठिन हो सकता है जबकि 'सहायक संस्था फ्रेमवर्क', समाधान प्रक्रिया को आसान बनाने के अलावा, मेज़बान क्षेत्राधिकारों को, अधिक विनियामक नियंत्रण और सुविधा प्रदान करता है। संकट की स्थितियों में शाखा और बाकी बैंक के बीच अंतर तथा परिसंपत्तियों और देयताओं की विधिक अवस्थिति, वास्तव में महत्त्वपूर्ण हो सकती है। इस वर्ष जनवरी में जारी चर्चा-पत्र के आधार पर, रिज़र्व बैंक भारत में विदेशी बैंकों की उपस्थिति हेतु दिशानिर्देश जारी करेगा।

VI. प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के लिए समाधान ढाँचा

31. अंतिम चुनौती जो मैं बताना चाहता हूँ वह है - प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के लिए समाधान ढाँचे का विनियमन । इन संस्थाओं की परिवीक्षा और विनियमन इस समय अंतरराष्ट्रीय कार्यसूची में काफी ऊपर हैं, विशेषकर, क्योंकि कई देशों में इनकी उपस्थिति काफी अधिक है, और इनमें बहुत बड़ा गैर-बैंकिंग क्षेत्र भी शामिल है। इन संस्थाओं से व्यवहार के लिए काफी कौशल और ज्ञान चाहिए जिसे समझने के लिए सभी देश प्रयत्नशील हैं। उन प्रणालीगत अधिभारों की उपयुक्तता पर भी बहस हो रही है जो इन संस्थाओं से अतिरिक्त पूँजी धारण की अपेक्षा करवाते हैं। जहाँ यह उच्चतर पूँजी फर्मों पर अतिरिक्त लागत का बोझ डालेगी वहीं मजबूत तुलन-पत्रों से होने वाले लाभ, तेज़ वित्तीय आघातों को सहने में सक्षम होंगे जिससे लागतों की भरपाई हो जाएगी।

32. इतना ही आवश्यक यह भी है कि हम गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के लिए एक प्रभावी समाधान-तंत्र विकसित करें। बड़ी और जटिल संस्थाओं के लिए, जोखिम प्रबंधन और नए मानदंड स्थापित करना एक भारी कार्य है और उनका कार्यान्वयन इससे भी भारी होगा। अब तक बैंकों और ग़ैर-बैंकों का विनियामक और विधिक ट्रीटमेंट समझने योग्य था क्योंकि उनके कार्य भिन्न-भिन्न बाजारों में केंद्रित थे। बड़ी और जटिल वित्तीय संस्थाओं और समूहों के उदय से, जो कि बैंकिंग और गैर-बैंकिंग - दोनों क्षेत्रों में फैले हैं, पर्यवेक्षण और समाधान ढाँचों का एकीकरण परमावश्यक हो गया है। इस प्रयास में काफी समय, संसाधन, विशेषज्ञता और दृष्टिकोण की ज़रूरत पड़ेगी जिससे पूरी प्रणाली के जोखिमों का विश्लेषण हो सके।

33. कई भारतीय बैंक विशाल वित्तीय संस्थान बन गए हैं और भिन्न-भिन्न बाजारों में भिन्न-भिन्न वित्तीय उत्पाद प्रस्तुत कर रहे हैं। इन्हें 'घरेलू' प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ कहा जा सकता है। विनियामक परिप्रेक्ष्य में, इससे दो चुनौतियाँ सामने आती हैं - पर्याप्त विधिक फ्रेमवर्क का अभाव तथा सीमित अंतर्विनियामक सहयोग फ्रेमवर्क।

34. सबसे पहले, विद्यमान विधिक और विनियामक फ्रेमवर्क के भीतर समाधान की क्षमता बढ़ाना, नव निर्मित एफएसडीसी की प्रमुख ज़िम्मेदारियों में से एक है। एक महत्त्वपूर्ण कार्य, ऐसी समाधान योजनाएँ बनाना होगा, जो संस्थाओं के बीच के सहसंबंधों से जुड़ी सूचनाओं को सुस्पष्ट रूप से ध्यान में रखे। इसके अतिरिक्त हमें वैश्विक स्तर पर प्रणालीगत दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के लिए पर्यवेक्षकीय महाविद्यालयों जैसे तंत्र बनाने के बारे में भी सोचना होगा।

35. दूसरे, इन महासंस्थाओं का पर्यवेक्षण, बैंकों के कारोबारी मॉडलों तथा जोखिम प्रोफाइलों को समझकर शुरू किया जाना चाहिए। रिज़र्व बैंक ने बड़े तथा प्रणालीगत दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बैंकिंग समूहों का बारीकी से तथा निरंतर पर्यवेक्षण-तंत्र स्थापित करने के लिए एक 'वित्तीय महासंस्था निगरानी प्रभाग' बनाया है। इस समय 12 ऐसी संस्थाएँ हैं जो इस वर्ग में आती हैं और उनके पास बैंकिंग क्षेत्र की कुल परिसंपत्तियों का 53 प्रतिशत हिस्सा है। हमारी छमाही वित्तीय स्थिरता रिपोर्टों के एक अंश के रूप में हमने विभिन्न परिदृश्यों के अंतर्गत, तनाव परीक्षणों के द्वारा, अग्रगामी दृष्टिकोण लागू करना भी शुरू कर दिया है। एफएसडीसी की उप-समिति, बड़ी वित्तीय महासंस्थाओं की निगरानी

के लिए, अंतर्विनियामक समन्वय हेतु एक संस्थागत फ्रेमवर्क विकसित करने में लगी है।

निष्कर्ष

36. जैसा कि किसी ने कहा है कि हम वैश्विक वित्तीय संकट से भी कुछ सीख सकते हैं और असल में हमने सीखा भी है। अब हम यह जान गए हैं कि वित्तीय बाज़ार खुद को नहीं सुधारते तथा वित्तीय अस्थिरीकरण की बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। हम यह भी जान गए हैं कि अस्थिरता के लक्षणों को कम समय में समझ पाना बहुत कठिन होता है इसीलिए हमें अधिक सतर्क रहना होता है। अब हम एक त्वरित प्रभावी और पारदर्शी समाधान प्रणाली लागू करने की जरूरत के प्रति भी संवेदनशील हुए हैं ताकि सांसर्गिकता को भी रोका जा सके।

37. इस संकट से एक और शिक्षा जो हमने ली है वह यह है कि यद्यपि हमारे सामूहिक अनुभवों से, प्रत्येक को कुछ न कुछ सीखना है, तथापि जो समाधान हम लागू करें वे संदर्भानुसार और प्रत्येक देश की परिस्थिति के अनुरूप होने चाहिए। यह विनियमों और वित्तीय प्रणालियों के पर्यवेक्षण के समूचे विस्तार पर लागू होता है जिसमें निक्षेप बीमा प्रणालियों का परिचालन भी शामिल है। मुझे आशा है कि यह सम्मेलन हमें 'सोचें वैश्विक और करें स्थानीय' की धारणा के और करीब ले जाएगा। सम्मेलन के विचार-विमर्श की सफलता के लिए मेरी ओर से ढेरों शुभकामनाएँ।